अन्वीक्षा, वर्ष 12, अंक 14, 2015 (33-39) ISSN - 0976-674X

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का चित्रण

डॉ. अभिलाषा शुक्ल

शोधसार – स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दी उपन्यास विधा का तेजी से विकास हुआ है । भारतीय ग्राम एवं नागर दोनों जीवन का उपन्यासकारों ने चित्रण किया है । स्वतंत्रता के बाद लिये उपन्यासों में ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति हुई है । भारतीय सांस्कृतिक जीवन् मूल्यों का चित्रण हिन्दी के कई ग्रामीण उपन्यासों में हुआ है । साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासकारों ने ग्रामीण जीवन को भी अपने उपन्यासों की कथावस्तु बनाया है, अनेक उपन्यास है जिनमें ग्रामों का संपूर्ण जीवन चित्रित है ।

भारतीय संस्कृति मूलतः कृषि संस्कृति है जिसकी पृष्ठभूमि सनातन ग्राम जीवन है। इस संबंध में ग्राम–संस्कृति को ही भारतीय संस्कृति के रूप में परिभाषित करना असंगत नहीं होगा। किन्तु नये कथा–साहित्य में चित्रित सांस्कृतिक स्थिति को देखकर लगता है कि अन्तरवृत्ति और वाह्य–संगठन दोनों ही दृष्टि से ग्राम–जीवन का यह पक्ष सम्प्रति अत्यंत उध्वस्त और मात्र रूढ़ियों के समुच्चय के रूप में अवशिष्ट रह गया है। उसमें आदर्शों का समाविष्ट रूप संपूर्णतः खो गया।''[1] भारतीय संस्कृति का प्रारंभिक स्वरूप ग्राम ही रहे हैं। ग्रामों से ही आगे नगर संस्कृति विकसित हुई है। कहा जाता है कि युग ही संस्कृति का है और संस्कृति जिसका संबंध ईश्वर, धर्म, अध्यात्म, नैतिकता और अंशतः कर्मकाण्ड आदि से है, नयी वैज्ञानिक भौतिकवादी उपलब्धियों की उपस्थिति में अब पुराकाल–सी प्रेरणा अथवा उत्तेजना प्रदान करने वाली नहीं रही। व्यक्ति का जीवन आमूल चूल परिवर्तित हो गया है। उसके मूल्य बदल गये हैं और परिप्रेक्ष्य परिवर्तित हो गये हैं । उसके मानदंड भी संस्कृतिमूलक न होकर सभ्यतामूलक हो गये हैं। यदि संस्कृति का स्त्रोत ग्राम–जीवन है तो सभ्यता का स्त्रोत नगर–जीवन है। विज्ञान के अकूत वैभव और वरदान से गरिमाशाली प्रसारशील नगर गाँवों पर द्रुतगति से छाते चले जा रहे है और उनकी चपेट में ग्राम टूटते जा रहे हैं । सांस्कृतिक अवमूल्यन के नये आयाम गाँवों के नगरीकरण के परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित हो रहे हैं । धर्म, दर्शन, विश्वास, साहित्य, संस्कार, स्नान, नदी, तीर्थ, शिक्षा–दीक्षा, वर्ण–मूर्ति, जीविका, मंदिर, त्यौहार, विवाह, संस्कार रीति, पोशाक, पूजा, गीत, कला, कृषि, भोजन, शास्त्र, वाद्य और नृत्यादि के सांस्कृतिक क्षेत्र आधुनिक जीवन–क्रम में एक मनोरंजन के साधना मात्र या अंध परंपरा–पालन है। उनमें जीवन के प्रति किसी गहन–गंभीर दृष्टिकोण की स्थिति नहीं, न ही किसी लौकिक–पारलौकिक उत्कर्ष का शील संवेदित है ।''[2]

---

* सहायक प्राध्यापक हिन्दी, माता गूजरी महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

परम्पराएँ ही संस्कृति हैं जो कालान्तर में उस समाज विशेष के मूल्य के रूप में जाने जाते हैं। कृषि कार्य के बाद माननीय समाज में संस्कारिक परिवार का, समुदाय का निर्माण हुआ है और यहीं से व्यक्ति के सांस्कारिक मूल्य निर्मित हुए। हिन्दी उपन्यासों में प्रेमचंद जी के समय से ही ग्रामों की ओर लेखकों ने दृष्टि डाली हैं। ग्रामों का कथानक बनाया है और ग्रामीण जीवन–मूल्य उपस्थित किये हैं ।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय ग्राम्य समाज व आदिवासी समाज के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का चित्रण हुआ है। राजेन्द्र अवस्थी ने गोंड़ों की जिंदगी को अपने उपन्यास में चित्रित किया है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी–कथा–साहित्य में ग्राम–जीवन की सांस्कृतिक स्थिति का रागात्मक बोध जो उभरकर आया वह प्रधानतया वाह्योपचार पर आधारित है। किन्तु ब्राह्योपचारधारित सांस्कृतिक चित्रण की प्रगति आरम्भावस्था पर ही अवरूद्ध हो गई। उसका विकास नहीं हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के ठीक बाद यह लहर हिन्दी कथा–साहित्य में आई थी। जिस प्रकार कथा–साहित्य समारोह ग्रामोन्मुखी हुआ था वह एक असाधारण सांस्कृतिक अन्तरप्रेरणा का द्योतक था। इस क्रम में एक ओर उपेक्षितों को कथाकारों द्वारा अपनी संवेदना प्रदान की गई।''[3]

ग्रामीण नारी नगरीय स्त्री की तुलना में लुकी–छिपी हुई है। वह पूरी तरह संस्कारित है। वह कर्तव्य बोध से जुड़ी है। संस्कारों के प्रति सजग हैं। 'अलग–अलग वैतरणी में शिव प्रसाद सिंह ने कनिया के चित्रण में गंभीर प्रशान्त सांस्कृतिक ग्राम नारी–व्यक्तित्व को कुशलता से उभारा है । कनिया सनातन नारी परम्परा का एक मौन सौन्दर्य–चित्र है। आदि से अन्त तक उसमें अभिजात कुलवधु के शील के साथ गहन उत्तरदायित्व बोध का संतुलन बना रहता है। शिव प्रसाद सिंह की अन्य रचनाओं में भी इस प्रकार के सांस्कृतिक चित्र अंकित हुए है । गॉव के पर्व, मेले त्यौहार ज्यौं के त्यौं मनाये जाते हैं बल्कि अलग अलग वैतरणी के कथानक का प्रारंभ ही करैता गॉव के देवीधाम के मेले से होता है।''[4] ग्रामीण जीवन पर आधारित अनेक उपन्यास सहज नारी–जीवन को अभिव्यक्ति देते हैं। ग्राम नारी जैसे धर्म, आस्था व संस्कार को सदियों से अपने अन्तर में समाविष्ट किये हुए हैं।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह जी ने अलग अलग वैतरणी में मेले का उल्लेख इस प्रकार किया है –' आज ही मेला शुरु हुआ है । कल खत्म हो जायेगा । हरसाल रामनवमी को करैता के देवीधाम पर यह मेला लगता है ।''5

बाल विवाह यद्यपि एक कुरीति है, परन्तु ग्रामीण समाज में तथा कुछ क्षेत्र विशेष में, जाति विशेष में नगरों में भी यह प्रथा इनके सांस्कारित जीवन है । शिव प्रसाद सिंह ने 'अलग–अलग वैतरणी' में ग्राम–स्तर पर वैवाहिक संदर्भ और उसकी परिस्थितियों का जो मर्मस्पर्शी चित्रांकन किया है वह बहुत ही प्रभावशाली तथा

रोमांचक है।

'अलग–अलग वैतरणी' में कल्पू को दस हजार तिलक तो मिलता है परंतु विवाह बहुत महँगा पड़ता है। अविकसित आयु में युवा पत्नी घर बैठ जाती है। उसका काम विकास एक स्तर पर अवरूद्ध हो जाता है। वह मनोवैज्ञानिक व्याधियों से आक्रान्त होकर क्लीव पुरुष हो जाता है। अनुतीर्ण हो–होकर पढ़ाई छूट जाती है। मानसिक रोग शारीरिक व्याधि में परिणत हो जाता है । तिलक–विवाह से न केवल उसकी बल्कि घर की परंपरित प्राचीरों में बन्दी उसकी पत्नी–पटनहिया भाभी की भी हत्या हो जाती है। कथाकार ने करैता के नरक में पटनहिया भाभी के आँसुओं की नदी को भींगे मन से देखा है । ग्रामीण–अभिभावक शिक्षा–दीक्षा से महत्वपूर्ण विवाह को ही मानते हैं ।''[6]

धर्म को लेकर हमारे समाज में अनेक भ्रांतियाँ हैं । धर्म का वास्तविक अर्थ कुछ और ही है। 'धारयेति अनेन इति धर्मः' अर्थात जो धारण किया जाय वही धर्म है।' हम सत्विचार ही धारण करते हैं। 'परोपकार' हमारे यहाँ पावन धर्म है। 'परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।।' धर्म हमारे सांस्कृतिक जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा में सहयोग देता रहा है। आज के इस युग में सर्वाधिक अवमूल्यन धर्म का हुआ । कथा–साहित्य में जिस रूप में यह चित्रित हुआ है, उसे देखकर लगता है कि गाँव में धर्म पाखंड अथवा अंधविश्वास बनकर शेष रह गया, एकदम खोखला। उसका संस्कृति–रस निचुड़ गया । उसके केन्द्र भ्रष्टाचार के अड्डे हो गये। रेणु और नागार्जुन ने इसका बहुत प्रभावशाली चित्रण किया है। 'मैला आँचल' में दिन रात भजन, बीजक पाठ और सत्संग का दिखावा करने वाला, 'सतगुरू हो' की टेक के साथ उठने–बैठने वाला, खंजड़ी पर निरगून में डूबने वाला महंथ सेवादास का चेला रामदास एक दिन रात में लक्ष्मी कोठारिन के यहाँ पहुँच जाता है और उसके याद दिलाने पर कि वही उसकी 'गुरुमाई' है, कहता है, 'कैसी गुरुमाई?' तुम मठ की दासिन हो, महंथ के मरने के बाद नये महंथ की दासी बनकर तुम्हें रहना होगा । तू मेरी दासिन है। इसी लछिमी कोठारिन का नया संस्करण नागार्जुन के उपन्यास 'इमरतिया' का भाई इमरतीदास, जमनियाँ गाँव के मठाधीश 'बाबा' की चेलिन है। बिना चेलिन के 'बाबा' लोग नहीं रह पाते। बाबा का कथन है– 'इमरतिया जायेगी तो जिलेबिया नहीं आयेगी ?' एकाध सधुआइन न रहे तो मठ उदास लगता है। धार्मिक पाखंड राजनीति और अर्थचक्र से जुड़कर आज और विकृत हो उठा है । एक महान विलासी सामन्त की भाँति धर्मध्वजी गाँव के 'बाबा' जिस प्रकार भाँग–बादाम की आड़ में शराब के दौर के बीच नगर में आलीशान मकान किराये पर लेकर रहते है और जिस प्रकार के अपटूडेट लोग चमड़े के बड़े–बड़े सूटकेस के साथ उनके यहाँ आते–जाते रहते हैं उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तस्कर व्यापार और पाकिस्तानी एजेन्सी दोनों के वे सूत्रधार है। जमनियाँ में अड्डा बनाने के विषय में उन्होंने बताया है कि यह पिछड़ी और नीच जातियों का क्षेत्र है जिससे अनेक सुविधायें हैं ।''[7]

सावन की वर्षा उनके प्राणों में अद्‌भुत उत्फुल्लता का संचार करने वाली सिद्ध होती है । इसी मास में नागपंचमी का सांस्कृतिक त्यौहार पड़ता है जो ग्रामीण क्रीड़ाओं के सांस्कृतिक समारोह के लिए निर्धारित सनातन दिवस है । रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ' में इस त्यौहार पर आयोजित एक क्रीड़ा के संदर्भ में युगीन टूटन के प्रभाव को बहुत मर्मस्पर्शिता प्रदान की गई है । इस अवसर पर 'चिक्का' खेलने के लिए लड़के जुटते तो है परंतु प्रौढ़ सतीश को ऐसा लगता है कि 'गाँव के लड़कों में चिक्का–कबड्डी खेलने का वह उत्साह नहीं रहा जो उसके जमाने में था । पहले तो सयाने लोग भी जी खोलकर इस अवसर पर खेल में टूट पड़ते थे। जो नहीं खेल सकते थे वे आकर दर्शक रूप में बैठ जाते थे । किन्तु अब रंग ही कुछ और हो गया है । अब तो बच्चे बाहरी स्कूलों में पढ़–लिख लेने के नाते इन खेलों को गँवारु खेल समझते हैं, शहरी नकल करते हैं किन्तु ये गाँव के छोकरे न देहात के काम के रह पाते हैं और न शहर के सीख पाते हैं।'[8]

ग्रामीण समाज त्यौहारों के प्रति विशेष निष्ठामय रहता है। ग्रामीण अपनी निष्ठा और जनविश्वास लेकर त्यौहारों को हृदय की गहराई से स्वीकार करते हैं । त्यौहारों को मनाने के लिए वे पूर्व तैयारी करते हैं। देश में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध, लेनीय जातियाँ इन सभी में त्यौहारों की पूर्व तैयारी की जाती है। सारा ग्रामीण समुदाय 'होली' मनाने के लिए 15 दिवस पूर्व और 15 दिवस बाद तक मनाने की तैयारी करता है।

उदयशंकर भट्ट के उपन्यास में बरसोवा ग्राम की होली का रंग भी बहुत चटक है। समुद्र के किनारे, मैदान में, घर के बाहर, चाँदनी रात में स्त्री–पुरूष गिरोह के गिरोह नाचने के लिए इकट्ठा होते हैं। शराब चल रही है। नाना प्रकार का व्यंजन बन रहा है। भोज होता है । पुरुष–स्त्री एक दूसरे पर गुलाल फेंक रहे हैं और 'हाय–हाय होली खेला तू जायगो।' का समवेत गायन चलने लगता है। 'कोहबर की शर्त' में केशव प्रसाद मिश्र बलिया की होली का चित्रण करते हैं। फगुआ गाते हुए लोग द्वार–द्वार घूम रहे हैं । उन पर अब रख मिश्रित अबीर फेंकी जा रही है। लौडे की नाच और 'जोगीड़ा' का आयोजन है। पहले दिन होली जलाने के बाद 'लुकाइ' भांजकर दूसरे सीवान में फेंका जाता है। इससे कहीं–कहीं 'होलरी' भी कहते हैं।

ग्राम्य–जगत् के अनेक संस्कार होते हैं। अनेक त्यौहार का पालन क्षेत्र विशेष के अनुसार होता है। ग्रामों में आज भी इन त्यौहारों को मनाने की प्रवृत्ति कायम है जबकि नगरों में यह पर्व अब छूटते जा रहे हैं। हिन्दी कथा–साहित्य में अन्य त्यौहारों में खेल–कूद वाला बरसाती त्यौहार नागपंचमी, गंगा स्नान और शुभ कार्यों के आरंभ का चिबड़ा मिठाई वाला त्यौहार मकर संक्रांति अर्थात् खिचड़ी, हिमालय सैंकड़ों प्रकार की दल बाँधकर उतरने वाली चिड़ियों को चावल, केला, गुड़, मिठाई और दूध खिलाने वाला कुमारिकाओं का त्यौहार श्याम चकेवा, मुसलमानों का त्यौहार रमजान, मुहर्रम, मुहर्रम में इमामबाड़े पर सेहरा चढ़ाना और मातम–नोहा, मजलिस–मरसिया आदि के आयोजन चित्रित है । 'सि पंचमी का सगुन' में श्री पंचमी त्योहार

को भारतीय कृषि के शुभारंभ से रेणु ने जोड़ा है। भारतीय त्यौहारों की यह एक विशेषता है कि उनके साथ अनिवार्य रूप से मेले जुड़े हुए हैं । 'अलग–अलग वैतरणी' का आरंभ ही रामनौमी के मेले से होता है । यह चैत रामनौमी का त्यौहार मातामइया के पूजन का बहुत ही भावुकता वाला पर्व है। इसमें रागात्मकता हर त्यौहार से अधिक है। किन्तु जैसा कि आरंभ में ही चर्चा की गई है टूटन और उदासीनता इसमें भी आ रही हैं। 'अंतरिक्ष युग की माता मइया' शीर्षक एक रचना में लेखन ने इस पर्व के भविष्य को वैज्ञानिक अनुसंधान और उसकी उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में देखा है और गहरी चिन्ता व्यक्त की है। 'जल टूटता हुआ' का आरंभ 'स्वतंत्रता दिवस' के त्यौहार के विषद चित्रण के साथ हुआ है।

'मेला' उत्सव के रूप में हमारा संस्कार है । नगर तथा ग्राम दोनों समाज में 'मेलों' के प्रति निष्ठा तथा उत्साह बना हुआ है । नगर के लोग तथा ग्राम निवासी किसी स्थान विशेष पर इस त्यौहार को मनाने पहुँचते हैं। भारतवर्ष में मेले का जैसा सांस्कृतिक महत्व है और ग्रामीण जन समुदाय उसमें जैसी रुचि प्रदर्शित करता है। उसे देखने के लिए कथा–साहित्य में उसका प्रतिफलन दृष्टव्य है।

शिव प्रसाद सिंह जी के उपन्यास अलग अलग वैतरणी में देवीधाम के मेले का चित्रण हुआ है। यह ग्रामीण सांस्कृतिक–मूल्यों की पहचान है। हिन्दी कथा–साहित्य में मेले का सबसे उदात्त, सांस्कृतिक, आधुनिक और विशाल चित्रांकन किया है शिव प्रसाद सिंह ने 'अलग–अलग वैतरणी' के आरंभिक तीस पृष्ठों में। यह एक पूर्ण वर्णन है जिसमें ग्राम जीवन की संपूर्ण समसामयिक अभिव्यक्ति है। 'बड़े–बूढ़ों का दल अभी पीछे था, ठमक–ठमक कर आता हुआ। पर लड़कों ने कतार से टूटकर, अपना एक अलग गिरोह बनाकर 'रेस' चला दी थी। हाँफते–चीखते, चिल्लाते वे मेले की ओर दौड़ पड़े थे ।"[9] देवी धाम के चौगिर्द आदमियों के विराट् समुद्र में ज्वार–भाटे उठ रहे थे। भीड़ की चुम्बकीय भाक्ति बच्चों को बुरी तरह खींच रही थी। 'उदेख रे उदेख' चिल्लाते दौड़ते चले आ रहे थे। इस तरह की सजीव चित्रावलियों से तो पूरा वर्णन समृद्ध है ही, समसामयिक प्रवृत्तियों का, नवपरिवर्तित संदर्भों का, ग्राम जीवन के उतार का, नयी सामाजिकता और राजनीतिक प्रभावों की अभिव्यक्ति का भी इसमें निखार मिलता है तथा सहज ही यह करैता के देवीधाम वाले मेले का प्रथम अध्याय पूरे उपन्यास की एक सांस्कृतिक भूमिका हो जाता है। यह मेला चित्रण इस विशाल उपन्यास के भीतर एक लघु उपन्यास है । उसमें नये ग्राम–जीवन की समग्र झाँकी है इसलिए मेला तलवर्ती जीवन का एक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन हो गया है।

प्रेमचंद जी ने ग्राम्यजगत् के सांस्कृतिक जीवन का सजीव चित्रण किया है । 'वरदान' की विरजन के पत्रों में ग्रामीण अन्धविश्वासों का चित्रण हुआ है। पिछड़ा समाज इन्हें आज भी अपना जीवन–मूल्य स्वीकार करता है। प्राचीन समाज में भूत–प्रेत पर अखण्ड विश्वास रहा है। शिक्षा प्रचार–प्रसार के कारण नगरों में यह

विश्वास खत्म होता जा रहा है तथा ग्रामों में अभी भी कायम है । भूत–प्रेत कथाएँ पहले कथा–साहित्य में सस्ते मनोरंजन और रोमांच के लिए गृहीत थी किन्तु स्वातंत्र्योत्तर कथा–साहित्य में उन्हें नयी प्रतिष्ठा मिली है । उनका चित्रांकन किसी अन्य उद्देश्य से नहीं अपितु तटस्थ चित्रण के ही उद्देश्य से हुआ है । आंचलिक कथाकारों के लिए उस अंचल विशेष को कला की तूलिका से उजागर कर देना ही अलम् होता है अतः वे उसके चित्रफलक को अमिश्र चित्रण स्तर तक ही सीमित रखते हैं। 'सती मइया का चौरा' में भैरव प्रसाद जी ने पियरी ग्राम में व्याप्त अन्धविश्वास का चित्रांकन किया है। 'परतीःपरिकथा' में रेणु ने पूर्णिया अंचल के एक विकसित गाँव को लिया परंतु विकास और नयी समस्वरता के होते भी गाँव भूतभाँवर और अंधविश्वासों की गहरी परतों में दबा है। संस्कृति के नाम पर विकृति है। लोगों की धारणा है कि हवेली के पिछवाड़े वाले 'ताड़वृक्ष' पर ब्रह्मपिशाच रहता है। हिमांशु श्रीवास्तव की पुस्तक 'नदी फिर वह चली' में एक ब्राह्मण का मारा गया लड़का जामुन के पेड़ पर ब्रह्मविशाचल होकर निवास करता है और लोगों को सपने देकर विधिवत अपना चबूतरा बनवाकर पूजा लेता है। भूत–प्रेत जीवन–मूल्य नहीं हैं पर जनविश्वास के रूप में भी प्रस्तुत हैं।

कुल पूजा भारतीय समाज की अपनी निजी विशेषता है, कुल के देवी–देवताओं से संतान की भलाई के लिए प्रार्थना की जाती है । उत्तर भारत में विन्ध्यावासिनी तथा मध्य भारत में मैहर की देवी की विशेष पूजा होती है ।

राजेन्द्र अवस्थी ग्राम्य जीवन के कथाकार हैं। आदिवासियों को उन्होंने निकट से देखा है। आदिवासी जीवन में पूजा का विशेष महत्व होता है। देवपूजा का सबसे प्रभावशाली चित्रण राजेन्द्र अवस्थी ने किया है। 'सूरज किरन की छाँव' में चित्रित नारायण देव की पूजा एक प्रभावशाली चित्र है। उसे वर्णन के स्तर तक सीमित न रखकर कथाकार प्रभाव के स्तर पर मुद्रित करता है। पूर्ण विविध विधान का आलेखन होता है। गुनिया का करतब खुलता है। मंत्राविष्ट झूमते सुअर को देखकर कोई सरकारी अधिकारी है जो हतचेत हो जाता है। उस पर पादरी की औषधि व्यर्थ हो जाती है। गुनिया मंत्र से प्रकृतिस्थ रहता है तो भेद खुलता है कि किसी चुड़ैल ने उस पर आक्रमण कर दिया था। 'कलावे' में नागदेवता दस भविष्यवाणियाँ करते हैं और प्रायः ये ऐसी हैं कि अनुमान से कोई भी कर सकता है। उनकी कुछ भविष्यवाणियों में विचित्रता भी है । जैसे यह कि 'तालाब में भैंस पैठेगी और सड़क पर गधे दौड़ेंगे।'[10]

लोकगीत जीवन के प्रमुख आयाम है । ग्रामीण जगत् में इनके बिना जीवन संभव नही हैं । गीत जीवन का संगीत है। सारी कडुआहट भूलकर व्यक्ति गीतों की दुनिया में खो जाता है। गरीबी भूलकर लोग गीतों की दुनिया में चले जाते हैं। लोकगीतों में गाँव के प्राणों का स्पन्दन होता है तथा उनका समूचा अन्तर–वैभव इन गीतों के रूप में प्रस्फुटित होता है। परम्परा के रूप में गाये जाने वाले ये लोकगीत जिनके रचयिताओं का

कोई परिचय नहीं होता है कभी–कभी उनके गायकों के व्यक्तित्व के साथ मिलकर एकाकार हो जाते हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी–कथा–साहित्य में आंचलिकता की प्रवृत्ति ने गाँव के लोकगीतों को खेत–खलिहान से उड़ा कर साहित्य के अमर पृष्ठों के साथ जोड़ दिया। 'कोहबर की शर्त' में जोगीड़ा जैसा गीत है तो लोकगीतों की भी चर्चा केशव प्रसाद मिश्र ने की है। रामदरश मिश्र ने भी अपनी कृतियों में – 'ऐ गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो, सैंया से कई दे मिलनवा हे राम।' जैसे गीत चित्रित किये हैं ।

लोक कथाएँ अपना संसार अलग रचती हैं । नगरीय जीवन में व्यस्तता होती है अतः लोककथाओं को कौन सुनता है परंतु ग्राम्य जीवन में इन कथाओं को चमत्कार माना जाता है। और इन गीतों के प्रति असीम निष्ठा बनी रहती है। लोककथा एक सशक्त विधा है, बल्कि कथा की आदिम–विधान है। आधुनिक कथा–साहित्य यद्यपि इसे छोड़कर बहुत दूर निकला जाता है तथापि बुद्धिवाद, सामाजिक, संबंधों की अन्तर्मुख जटिलता और मनोवैज्ञानिक तनाव आदि की कड़वाहट के रेचन के लिए आधुनिक कथा–साहित्य में कथाकार आंचलिकता की प्रवृत्ति का पल्ला पकड़ता है और लोक–संस्कृति, मुख्यतः लोकगीत और लोककथाएँ इस कार्य में उसके सहयोगी उपकरण सिद्ध होती हैं । लोक कथाएँ ही आगे चलकर किसी महान् उपन्यास काव्य के सृजन में सहायक हैं। मधुकर गंगाधर का उपन्यास 'सुबह होने तक' लोक कथात्मक उपन्यास हैं जिसमें बिहार के ग्रामांचलों का चित्रण है वहाँ की लोक कथाएँ चित्रांकित हैं। इस प्रकार ग्रामीण जीवन मूल्यों को लेकर स्वातंत्र्योत्तर अनेक उपन्यास लिखे गये हैं जिसमें ग्राम्य–जीवन मूल्य वैविध्य के साथ अभिव्यक्त किये गये हैं।

संदर्भ

1. स्वातंत्र्योत्तर कथा–साहित्य और ग्राम जीवन – विवेकीराय – लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 235
2. वही, पृ 236.
3. वही, पृ 236.
4. प्रेमचंद और परवर्ती ग्राम्य उपन्यास : तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. अरुण कुमार मिश्र,शेखर प्रकाशन इलाहाबाद पृ. 250.
5. 'अलग अलग वैतरणी', डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–1967, पृ. 02
6. 'अलग अलग वैतरणी', डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–1967, पृ. 10
7. मैला आँचल, फणीश्वरनाथ रेणु, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–1967, पृ. 72
8. जल टूटता हुआ, रामदरश मिश्र, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी–1969, पृ. 43
9. 'अलग अलग वैतरणी', डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–1967, पृ. 20
10 सूरज किरन की छाँव में, राजेन्द्र अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–1967, पृ. 36
11. प्रेमचंद और परवर्ती ग्राम्य उपन्यासःतुलनात्मक अध्ययन, डॉ. अरुण कुमार मिश्र,शेखर प्रकाशन इलाहाबाद पृ. 10.

*****